

THE ECONOMIC TIMES

Date: 28-12-18

Retrospective Policy Changes Damaging

The revised e-commerce norms need revision

ET Editorials



The revised e-commerce norms will hurt consumers, harm investments made in the sector, reinforce the perception of India as a country of policy uncertainty in the eyes of foreign investors and reduce efficiency in retail. True, several of the provisions reiterate or amplify those contained in earlier policy pronouncements. But the effective ban on private labels and the banning of equity participation by e-commerce platforms or group companies in vendors that sell on these platforms are new. As is the banning of procurement by vendors on these platforms from companies associated with the company that runs the e-commerce platform.

This hurts the business model not only of e-commerce marketplaces but also of business-to-business (B2B) investments. If a B2B company that also has a marketplace is barred from utilising the marketplace to sell the produce it aggregates from Indian suppliers, it loses a part of its attraction for those Indian suppliers, and amounts to restricting the B2B operation beyond the terms set out in policy, on the basis of which investment was made in that operation. Retrospective policymaking is worse than retrospective clarification of tax incidence in a grey area.

Such bans also abort efficiency gains in production planning, inventory management and delivery time. Since such restrictions do not apply to brick-and-mortar sales, the guidelines are discriminatory against e-commerce. Is it the job of the government to determine the marketing policy of vendors and the incentives offered to consumers? So long as the government collects its taxes, consumers get their desired deals and investment creates jobs and incomes in storage, delivery and after-sales service, what is the government's gripe? Unfair trade should be dealt with by the Competition Commission.

The urge to micromanage comes from the instinct to protect Indian industry. The best way to do that in the age of globally mobile capital is to allow shares with differential voting rights, not to carve out sanctuaries of protection within an economic sector.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 28-12-18

विचार पुराने, समाधान पुकारे

संपादकीय



नीति आयोग ने हाल ही में 'न्यू इंडिया के लिए रणनीति' जारी करते हुए कृषि अर्थव्यवस्था की हालत सुधारने के सुझाव दिए हैं। हालांकि इनमें से कई सुझाव समझ से परे हैं। कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (सीएसीपी) को कृषि न्यायाधिकरण में तब्दील करना, कृषि उपज की नीलामी के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की जगह न्यूनतम आरक्षित मूल्य (एमआरपी) लागू करना और गांव एवं ब्लॉक स्तर पर सरकारी उपज संग्रह केंद्र एवं भंडारगृह बनाने के प्रस्ताव तर्क को भी नकारने वाले हैं। यह साफ नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 323(बी) के अनुरूप सीएसीपी को

न्यायाधिकरण बना देने से क्या मकसद पूरा हो जाएगा?

न्यायाधिकरण बनाने के पीछे बुनियादी सोच यही होती है कि विवादों का निपटारा किया जा सके। वैसे भी कृषि उपज का मूल्य घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय बाजारों में मांग और आपूर्ति से तय होता है। फिलहाल सीएसीपी किसानों के हित एवं अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए फसलों का एमएसपी तय करता है। भले ही नीति आयोग की यह स्वीकारोक्ति सही है कि किसानों की आय बढ़ाने में एमएसपी महज आंशिक समाधान ही हो सकता है लेकिन एमएसपी की जगह एमआरपी लाकर मंडियों में कृषि उपज की नीलामी करने का विचार तो और भी बुरा है। कृषि बाजारों की अक्षमता, कारोबार प्रणाली की विविधता और कृषि जिंसाओं की खरीद-बिक्री पर बिचौलियों के दबदबे को देखते हुए आरक्षित मूल्य-आधारित नीलामी व्यवस्था किसानों के लिए अधिक माकूल नहीं रह सकती है। नियमित मंडियों में कारोबार कर रहे व्यापारी एक कार्टेल की तरह बर्ताव करते हुए किसानों की उपज के ऊंचे दाम ही नहीं लगाएंगे लिहाजा किसान मंडी परिसरों के बाहर बेहद कम दाम पर अपनी पैदावार बेचने के लिए मजबूर हो जाएंगे। उपज के संग्रह एवं भंडारण के लिए गांव के स्तर पर सुविधा केंद्र मुहैया कराने का आयोग का सुझाव भी दूर की कौड़ी ही लगता है। पिछले दशकों में किए गए तमाम प्रयासों और भारी निवेश के बावजूद फसल खरीद और भंडारण का ढांचा गेहूं एवं धान उत्पादक क्षेत्रों से आगे नहीं बढ़ पाया है।

इस तरह, किसानों की आय दोगुनी कर उनका असंतोष खत्म करने के लिए आयोग की तरफ से दिए गए सुझावों में नई सोच का अभाव है। नीति आयोग जैसी वैचारिक संस्था से अलग तरह के विचारों की अपेक्षा रहती है। हालांकि कृषि आय बढ़ाने के लिए तैयार रूपरेखा में दिए गए कुछ सुझाव अनूठे न होते हुए भी उपयोगी हैं। नीति आयोग का बिजली एवं पानी पर दी जा रही सब्सिडी खत्म करने का प्रस्ताव ऐसा ही है। आयोग ने इनकी जगह ड्रिप तकनीक जैसी सूक्ष्म-सिंचाई साधनों के लिए वित्तीय मदद देने की बात कही है। इसी तरह, पांच से दस साल के लिए कृषि निर्यात की एक सुसंगत एवं स्थिर नीति पर जोर देना भी सही है। इस तरह की नीतिगत व्यवस्था कृषि उपज अधिशेष का एक भरोसेमंद निर्यात विंडो बनाने के लिए बेहद जरूरी है। हालांकि कृषि निर्यात के लिए हाल ही में घोषित राष्ट्रीय नीति इस सिद्धांत की पुष्टि नहीं करती है। इसमें निर्यात को किसी भी वक्त सीमित करने की पर्याप्त गुंजाइश है ताकि सघन उपभोग वाले खाद्य उत्पादों की घरेलू कीमतों को संभाला जा सके।

आयोग ने आवश्यक वस्तु अधिनियम को नरम करने, अनुबंध खेती को बढ़ावा देने, बेहतर मूल्य के लिए वायदा कारोबार को प्रोत्साहन देने और कम मांग वाले सीजन में अपेक्षाकृत ऊंचे मूल्य पर उपज की बिक्री कराने के मोर्चे पर भी बढ़िया काम किया है। फसल कटाई के बाद उपज रखने के लिए गोदामों की शृंखला और शीतगृहों को ढांचागत क्षेत्र का दर्जा देने का सुझाव भी स्वागत-योग्य है। इस दर्जे से गोदामों और शीतगृहों को ढांचागत क्षेत्र वाली वित्तीय सहूलियतें मिल सकेंगी। लेकिन आयोग के अधिकांश सुझाव तो पहले भी रखे जा चुके हैं। अब वक्त इन सुझावों पर अमल का है।

Live
हिन्दुस्तान
.com

Date: 27-12-18

बदलती दुनिया में स्थिर विदेश नीति

सलमान हैदर पूर्व विदेश सचिव

साल का आखिरी हफ्ता न सिर्फ पूरे वर्ष की पड़ताल करने का मौका होता है, बल्कि यह सोचने का भी समय होता है कि इस पूरी अवधि में देश आखिर किस मुकाम तक पहुंचा? हाल ही में कई राज्यों के विधानसभा चुनावों के नतीजे आए। निश्चय ही इनका एक उल्लेखनीय असर पड़ा है। भले ये नतीजे मौजूदा विमर्श का हिस्सा नहीं हों, लेकिन इनके प्रभाव को नजरंदाज भी नहीं किया जा सकता। इन्होंने सार्वजनिक बहसों को एक नया मोड़ दिया है। अब जबकि हम नए साल में कदम रखने जा रहे हैं, तो पहले के कई मसले अब भी बदस्तूर कायम हैं और दशकों पुरानी चुनौतियां भी देश के नीति-निर्माताओं को उलझाए हुए हैं। इस वर्ष पाकिस्तान एक बार फिर हमारी विदेश नीति का प्रमुख हिस्सा रहा। भारत-पाकिस्तान की आपसी तनावपूर्ण में कोई ज्यादा सुधार नहीं आया।

देखा जाए, तो यह तनाव दोनों देशों के रिश्तों का एक चरित्र-सा बन गया है। हालांकि एक क्षण ऐसा लगा कि पाकिस्तान के नए निजाम इमरान खान नई पहल के इच्छुक हैं, जो आपसी रिश्तों को सकारात्मक दिशा में ले जा सकता है, लेकिन आने वाले दिनों में वह भी शिथिल हो गए और कुछ खास हासिल नहीं हो सका। यह कई लोगों के लिए निराशाजनक था। एक बड़ी आबादी द्वारा यह उम्मीद पाली गई थी कि तमाम अन्य सकारात्मक कवायदों के साथ-साथ तीर्थयात्रियों के लिए सीमा पार करतारपुर गलियारे का भी पुनरुद्धार हो सकता है। यह मसला तो फिर भी सांसों ले रहा है, लेकिन द्विपक्षीय रिश्तों में जिस मिठास के सपने दिखाए गए थे, उसे हासिल कर पाना तो मुश्किल ही लग रहा है। दूसरी तरफ, चीन के साथ अपने रिश्तों में उतार-चढ़ाव से भी हमें जूझना पड़ा। वैसे, तमाम मतभेदों के बावजूद दोनों देशों ने विवादास्पद मुद्दों को निपटाने में एक परिपक्व नजरिया दिखाया है। इतना ही नहीं, पिछले दिनों एक हद तक आक्रामक होने के बाद दोनों देश संबंधों के सामान्य धरातल पर आ गए, जिसकी पुष्टि हाल के महीनों में दोनों के बीच हुई कई उच्च-स्तरीय बैठकों से होती है।

फिर भी, कुछ गंभीर मसले अब भी कायम हैं, जो चिंता की वजह हैं। इनमें सबसे बड़ा मुद्दा निश्चित तौर पर चीन और पाकिस्तान का रिश्ता है। चीन की महत्वाकांक्षी परियोजना 'बेल्ट एंड रोड' को लेकर भारत की चिंताओं को अब तक दूर नहीं किया गया है। इस परियोजना के तहत न सिर्फ भारतीय सीमा में दखलंदाजी हुई है, बल्कि इन विकास परियोजनाओं का एक पक्ष सैन्य गतिविधियों से भी जुड़ा है, जिसके कारण यह मसला कहीं ज्यादा जटिल बन जाता है। भारत और इसके पड़ोसी देशों को परेशान करने वाले कई ऐतिहासिक क्षेत्रीय मसले भी हैं। इनमें से कई तो ऐसे हैं, जो

तत्काल समाधान की मांग करते हैं। इनमें से कुछ मुद्दे तो दुनिया की सबसे बड़ी ताकत अमेरिका की नीतियों से जुड़े हैं। यह सही है कि हाल के वर्षों में भारत और अमेरिका करीब आए हैं और उनके आपसी रिश्तों में गरमाहट भी दिखी है, लेकिन अमेरिका और ईरान के आपसी मतभेद भारत के लिए उलझन की स्थिति पैदा कर सकते हैं। अमेरिका की मंशा के बावजूद भारत अपने तेल-हित को देखते हुए ईरान से मुंह नहीं मोड़ सकता। अब भी, जब भारत-अमेरिका संबंध परवान चढ़ रहा है, तो भारत को सावधानी से अपने कदम आगे बढ़ाने होंगे। हाल के दिनों में अमेरिका ने बेशक तत्परता दिखाई है, लेकिन कभी-कभी वह अपने हित में दोस्तों और मित्र-राष्ट्रों की राय को भी तवज्जो नहीं देता।

आने वाले दिनों में विश्व समुदाय को ऐसे मसलों से भी जूझना होगा, जो नए भी होंगे और मुश्किल भी। तमाम देशों को इस पर ध्यान देने की जरूरत होगी। ग्लोबल वार्मिंग का सवाल ऐसा ही है। भारत इस मसले पर आम राय बनाने में अगुवा की भूमिका में भले नहीं रहा हो, लेकिन उसने अपना दायित्व ईमानदारी से निभाया है। देश के स्थानीय नियम-कानून बताते हैं कि भारत इस मसले को लेकर खासा संवेदनशील है। यही वजह है कि भारत की कोशिशों पर दुनिया भर से अच्छी प्रतिक्रिया मिली है, हालांकि कुछ बड़े देश अब भी मिल-जुलकर वैश्विक तापमान से जंग लड़ने को राजी नहीं हैं। तमाम अंतरराष्ट्रीय मुद्दों में ब्रेजिट यानी ब्रिटेन का यूरोपीय संघ से बाहर निकलने का फैसला इस साल भी सुर्खियों में रहा। ब्रिटेन, यूरोप और दुनिया के लिए यह अब भी एक जटिल मसला बना हुआ है और एक लंबी चर्चा के बाद भी संबंधित देशों के नेतागण किसी आखिरी फैसले से दूर हैं।

भारत सीधे तौर पर तो इस मसले से नहीं जुड़ा है, लेकिन इस प्रमुख और दूरगामी अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रम से वह भी कुछ हद तक जरूर प्रभावित हो सकता है। बहरहाल, भारतीय उपमहाद्वीप और इसके आसपास हुए ऐसे कई घटनाक्रम बताते हैं कि भारत और इसके नजदीकी देश आपस में किस कदर जुड़े हुए हैं। बेशक कई चुनौतियां भी हमारे सामने हैं, लेकिन नई दिल्ली क्षेत्रीय शांति और स्थिरता की एक महत्वपूर्ण धुरी मानी जाती है। अच्छी बात यह है कि इस दरम्यान हम आर्थिक विकास की अपनी तेज गति बनाए रखने में कामयाब रहे हैं। लिहाजा, भारत कुछ संतुष्टि के साथ साल 2018 की उपलब्धियों को साझा कर सकता है। सुखद है कि इस दरम्यान हमारी सामरिक क्षमता में लगातार वृद्धि हुई है, और आर्थिक जगत में भी भारत ने उल्लेखनीय उपलब्धियां दर्ज की हैं। इसीलिए 2019 की तरफ बढ़ता हुआ भारत आज इतने आत्मविश्वास से भरा हुआ है। वह भविष्य की तमाम चुनौतियों से निपटने के लिए तैयार दिख रहा है।

Date: 27-12-18

सांसदों की उदासीनता से एक अच्छी पहल भटक गई

अनिल प्रकाश जोशी सामाजिक विचारक

तकरीबन 24 साल पहले देश के माननीय सांसदों ने यह तय किया था कि विकास का कुछ फंड उनके पास भी होना चाहिए, ताकि वे अपने-अपने संसदीय क्षेत्र में अपनी प्राथमिकता के अनुसार कुछ कार्य करवा सकें। उनकी सबसे बड़ी दलील यह थी कि कई कार्य, जो छोटे-मोटे स्तर के होते हैं, उनके लिए लंबी प्रक्रिया के चलते देर होती है और एक सांसद के कार्यकाल में वे कार्य संभव नहीं हो पाते। इसलिए एक ऐसी निधि अवश्य होनी चाहिए, जिसका उपयोग वे अपनी प्राथमिकता के आधार पर करवा सकें। एक बार शुरू हुई यह पहल सांसदों तक ही कैसे सीमित रह सकती थी। यह

योजना नीचे विधायकों तक पहुंच गई। लेकिन अभी तक सांसदों और विधायकों की प्राथमिकताओं का जो सच सामने आया है, वह कुछ और ही कहानी कहता है। आज तक इस कोष के तहत आवंटित 44,929 करोड़ रुपये में से लगभग 26,000 करोड़ रुपये खर्च ही नहीं हुए हैं। यह सारा पैसा जिलों के ही पास है, जिस पर ब्याज मिलता जा रहा है और यह काफी बड़ी धनराशि हो चुकी है।

वर्तमान संसद में सांसदों को 2014-19 के दौरान 25 करोड़ प्रति सांसद की दर से 13,575 करोड़ रुपये खर्च करने थे, लेकिन वास्तविक खर्च का आंकड़ा बहुत नीचे ही थम गया। अब एक नजर विधायक निधि पर भी डाल ली जाए। उत्तराखंड में ही 71 विधायकों को वर्ष 2017-18 के लिए 195.25 करोड़ रुपये की निधि उपलब्ध कराई गई, लेकिन दिसंबर तक इसमें से मात्र 23 करोड़ रुपये ही खर्च हुए मतलब 171 करोड़ रुपये खर्च ही नहीं हुए। 21 नए विधायकों ने तो एक रुपया भी खर्च नहीं किया। सिर्फ दो विधायक ऐसे हैं, जिन्होंने 50 फीसदी से ज्यादा राशि खर्च की है। राज्य के मुख्यमंत्री ने जरूर 50 फीसदी से अधिक अपनी विधायक निधि का उपयोग किया। मध्य प्रदेश में पहले जहां हर विधायक के हिस्से 77 लाख रुपये विधायक निधि के अंतर्गत दिए जाते थे, उसे बढ़ाकर दो करोड़ रुपये कर दिया गया था।

दूसरी तरफ, वहां के 230 विधायक 177 करोड़ खर्च नहीं कर पाए। शुरुआती वर्ष तक 161 करोड़ रुपये खर्च नहीं हो सके, मतलब आवंटन का 10 फीसदी भी नहीं। उत्तर प्रदेश समेत अनेक राज्यों में इसे लेकर कई सारे विवाद भी सामने आए हैं। बिहार ने तो इसे बदनामी की जड़ मानते हुए बंद ही कर दिया है। इस निधि के कुछ अच्छे पक्ष भी हैं। मगर उनका अर्थ तभी है, जब मान्यवर इसके उपयोग व पारदर्शिता के प्रति गंभीर रहें। दिल्ली की सरकार ने तो विधायक निधि को ऑनलाइन ही कर दिया है, ताकि इसके कार्यों की प्रगति और लेखा-जोखा आम लोगों के पास हो और आम आदमी पार्टी को इसका श्रेय भी जा रहा है। अक्सर यह भी सुनने में आता है कि इस निधि का उपयोग न हो सकने के पीछे जानकारी और समझ का भी अभाव है। हालांकि कम से कम विधायक और सांसद जैसे जन-प्रतिनिधियों से तो यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि उनके पास जानकारी या समझ नहीं थी। एक तरफ, जहां इसका उपयोग न होता हुआ दिखता है, वहीं दूसरी तरफ इसे लैप्स होने से बचाने को लेकर विधायकों द्वारा अपने चुनावी साल में भरपूर उपयोग की भी कवायद होती रही है।

हाल ही में उत्तराखंड में गांव बचाओ की बैठक में यह बड़ा मुद्दा रहा। राज्य में 171 करोड़ रुपये जहां एक तरफ उपयोग नहीं हो सके, जबकि दूसरी तरफ ऐसे बहुत से आम मुद्दे हैं, जिनमें इस निधि का बेहतर उपयोग हो सकता है। मसलन, लोगों का कहना था कि इस निधि की बंदरबांट ही करनी है, तो विधायक निधि को गांवों में बंदरों, सूअरों और साही जैसे खेत के दुश्मनों से छुटकारा दिलाने पर लगा देनी चाहिए। ऐसे ही हालात देश में सभी जगहों के हैं। यह निधि देश में राजनीतिज्ञों की लगातार बिगड़ती छवि को बनाने में सहायक हो सकती है। वे कार्य, जो वे बड़े रूप में नहीं करवा पा रहे हैं, उनको यह निधि रास्ता दिखा सकती है। हमारे जन-प्रतिनिधियों को इस सार्वजनिक धन के इस्तेमाल की एक बड़ी कवायद तो शुरू करनी ही पड़ेगी। हो सकता है कि यह निधि उनके क्षेत्र में कोई बड़ा चमत्कार न कर पाए, पर लोगों तक कुछ राहत तो पहुंचा ही सकती है।

Date: 27-12-18



Bill of wrongs

The hastily passed Transgender Persons (Protection of Rights) Bill does not ensure privacy, dignity and livelihood to the embattled group.

Faizan Mustafa, Prerna Dhoop, (Faizan Mustafa is vice chancellor, NALSAR University of Law, Prerna Dhoop is assistant professor NALSAR University of Law, Hyderabad)

“After a prolonged discussion on this matter, I think that this Bill is perfect, there is no need for too much discussion on it now.”— Minister Social Justice and Empowerment, Thaawarchand Gehlot Amidst the sloganeering and ruckus over the creation of a Joint Parliamentary Committee on the Rafale deal, the Transgender Persons (Protection of Rights) Bill, 2018 was swiftly introduced and passed by the Lok Sabha on December 17.

At first glance, the government’s Bill looks quite promising compared to the 2016 version, after 27 recommendations of the Standing Parliamentary Committee were adopted. However, when one looks closer, pertinent questions arise: How has the Bill constructed the concept of “gender identity” and its long-term implications for transgender individuals? Is the Bill potent enough to correct the centuries-old discrimination and injustices against the transgender community? Does the Bill convert the constitutional guarantees of life, liberty and equality into lived experiences for transgender persons?

With a view to achieving a clear, coherent and stable definition clause, the Bill ends up providing a one-sided and an over-simplified understanding of the term “transgender”. Although the government has dropped the previous and more problematic definition, the present one is still defective on many counts. It emphasises the biological dimension of transgender identity; conflates “sex” with “gender” and weaves a medicalised discourse for both; and sets “male” and “female” bodies as the normative standards.

Gender identity is a complex concept that is manifested in multiple ways. While a trans-person may experience a dysfunction with respect to anatomy, others may face even bigger dilemmas about their “self-concept” and “social role”. The Bill fails miserably to factor in these equally significant aspects of transgender identity like how trans-persons view themselves vis a vis others; how the society views a trans-person; how trans-persons conduct themselves as well as interact with others and yearn to get a stamp of approval from the society at large. Evidently, the definition does not provide a “perfect” formula to determine exactly where an individual falls on the “sex anatomy spectrum” that nature has presented to us.

Queer theorists view gender identity as a malleable and fluid concept. They believe that individual life, identity and experiences cannot be constrained in boxes like male/female/transgender. Rather, they perceive a pluralistic world of infinite diversity. For instance, the definition clause very conveniently but erroneously includes all intersex persons within the term “transgender”. It fails to answer two important

questions: What constitutes non-standard sexual anatomy? Who decides when the sex anatomy category of male ends and the category of intersex begins or when the category of intersex ends and female begins?

While on the one hand, the Bill expressly prohibits discrimination against a transgender person, on the other hand, it limits the prohibition to only nine types of discriminatory acts. Discrimination is a multidimensional concept and to name just nine types is a travesty of justice. Further, it fails to prescribe a commensurate punishment for the violation of prohibited acts like sexual crimes. Shockingly, the Bill does not even decriminalise homosexuality in line with the 2018 Supreme Court judgment.

Not only does the Bill completely overlook everyday acts of bullying, intimidation and abuse carried out by police officials but also grants them complete immunity from prosecution. The bundle of rights, benefits and privileges extended to other citizens under various laws like marriage, divorce, inheritance and reservations have not been made available to trans-persons. The Bill grants a right to self-identification to transgender individuals as upheld by the NALSA judgment. Can an individual who self identifies as “male” today, wake up and put on a new gender tomorrow? What is the process to be followed if one wishes to change one’s gender identity?

As such, it is pertinent to analyse the right of voluntarism: First, the extent to which the Bill accommodates an individual’s freedom to choose gender; second, the limitations imposed on the right; and third, the implications of the same on transgender individuals. The Bill empowers the District Screening Committee comprising of medical experts and doctors to conduct physical tests in order to determine whether a person may be categorised as “transgender”. The NALSA judgment expressly prohibited subjecting a person to medical examination like intrusive body searches and stripping for such purposes. With this Bill, the government has put in place a new gender regulatory regime which is a negation of the privacy judgment.

The Bill is oblivious of the harsh realities and circumstances of the transgender community. For example, it does not allow the separation of transgender persons from their abusive families. Separation is possible only under exceptional circumstances, under a judicial order whereby a person may be placed in a rehabilitation centre. The insistence on living with the natal family is regressive. Further, state-run rehabilitation centres are known to have deplorable living conditions and frequent instances of sexual violence.

Begging is a primary source of livelihood for trans persons in India. By criminalising the activity, the Bill pushes them into penury. The police will likely use this provision arbitrarily to target trans-persons. The absence of any provision about education and affirmative action for the transgender community is another major shortcoming. It is disheartening that the 2018 Bill was passed in its present form. Let the Rajya Sabha improve the Bill and send it back to the Lok Sabha.
